International Journal of Applied Research 2016; 2(11): 383-385

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(11): 383-385
www.allresearchjournal.com
Received: 24-09-2016
Accepted: 25-10-2016

डॉ. रमेश चन्द
सहायक आचार्य, (अतिथि) योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल

Correspondence
डॉ. रमेश चन्द
सहायक आचार्य, (अतिथि) योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल

हठयोग के ग्रंथों में वर्णित षट्कर्मो के स्वस्थप्रद एवं चिकित्सीय लाभ

डॉ. रमेश चन्द

सारांश
प्रस्तुत शोधपत्र '' हठयोग के ग्रंथों में वर्णित षट्कर्मो के स्वस्थ्यप्रद एवं चिकित्सीय लाभ'' में वर्णित किया गया है कि हठयोग के प्रमुख ग्रंथ जैसे–हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता तथा अष्टांगयोग में विभिन्न षट्कर्मो का वर्णन उनके चिकित्सीय पक्षों की दृष्टि से पाया जाता है। हठयोग पद्धति में षट्कर्मो का प्रयोग शरीर में स्थूल रूप से स्थित मलों के निवारण की प्रक्रिया हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं; जिससे कि शारीरिक एवं मानसिक दोष, विभिन्न अग्नियाँ व धातुएँ संतुलित एवं प्राकृत अवस्था में व्यवस्थित होकर प्राणशक्ति के संचालन को गतिशील बनाये रखती हैं।

कुट शब्दः हठयोग के ग्रंथों, वर्णित षट्कर्मो, स्वस्थप्रद एवं चिकित्सीय लाभ

प्रस्तावना
योग सम्यक् जीवन का विज्ञान है। हमारे ऋषि–मुनियों ने गहन ध्यान एवं प्रयोगात्मक अनुभव के आधार पर इस विद्या को आविष्कृत किया था, जिसका मुख्य उद्देश्य समाज की दुःख, बैचेनी, भावनात्मक अस्तव्यस्तता और अतिक्रियाशीलता आदि भयप्रद समस्याओं का समाधान है। योग अपनी वैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा मनुष्य की छुपी हुई क्षमताओं को जाग्रत करने में मदद करता है, और उसे पूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करता है। यह शारीरिक स्तर पर सुदृढ़ एवं बलशाली, मानसिक स्तर पर शांत एवं एकाग्र, बौद्धिक स्तर पर प्रखर या तेज, भावनात्मक स्तर पर संतुलित, सामाजिक रूप से उच्च व्यवहारशील एवं आध्यात्मिक रूप से उच्च चेतनशीलता प्रदान करता है।
योग–चिकित्सा के एक महत्वपूर्ण अंग षट्कर्म की बात करें तो षट्कर्म शब्द दो शब्दों के मेल से बना है– षट्+कर्म। षट् शब्द का अर्थ है– छः तथा कर्म का अर्थ है– क्रिया। अतः छः क्रियाओं के समुदाय को षट्कर्म कहा जाता है। ये छः क्रियाएं योग में शरीर शोधन हेतु प्रयोग में लाई जाती है। ये शोधन क्रियाएं–नैति, नौलि, त्राटक, कपालभाति, धौति और बस्ति है। जैसे आयुर्वेद में पंचकर्म चिकित्सा को शोधन चिकित्सा के रूप में स्थान प्राप्त है, उसी प्रकार षट्कर्म को योग में शोधनकर्म के रूप में जाना जाता है। अतः षट्कर्म शब्द की परिभाषा की बात करें तो शरीर शुद्धिकरण की वह छः क्रियायें, जिन्हें आसन व प्राणायाम से पहले आन्तरिक अंगों की शुद्धि हेतु प्रयोग में लाया जाता है तथा जिसके परिणाम स्वरूप शरीरस्थ दोष, धातुएँ व अग्नियाँ समावस्था को प्राप्त कर समन्वय रूप से कार्य करते हैं, उन्हें षट्कर्म कहा जाता है।
प्राचीन योग उपनिषदों में हठयोग का वर्णन षट्कर्मो के रूप में किया गया है। यह एक सुव्यवस्थित एवं यथार्थ विज्ञान है। हठयोग का, और साथ ही षट्कर्मो का उद्देश्य है–दो मुख्य प्राण–प्रवाहों, इड़ा एवं पिंघला के बीच सामंजस्य स्थापित कर इनके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक शुद्धिकरण एवं संतुलन प्राप्त करना। इनका उपयोग शरीर में वात, पित्त और कफ को संतुलित करने के लिए भी किया जाता है। आयुर्वेद एवं हठयोग दोनों के अनुसार इन त्रिदोषों के बीच असंतुलन होने से रोग उत्पन्न होता है। शरीर को विषाक्त तत्वों से मुक्त करने एवं अध्यात्म मार्ग पर सुरक्षित रूप से सफलतापुर्वक आगे बढ़ने के लिए प्राणायाम एवं उच्च योगाभ्यासों से पूर्व इन अभ्यासों का उपयोग किया जाता है।[1]
प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के सिद्धांत एवं दर्शन के अनुसार शरीर के सफाई के माध्यमों में अयोग्य आहार–विहार व अन्य कारणों से विकृति आ जाने के कारण शरीर की धातुओं (वात, पित्त व कफ) में असंतुलन पैदा होकर दोष का रूप बन जाता है तथा शरीर की चयापचय क्रियाओं से उत्पन्न दूषित व विषैले द्रव्यों का निष्कासन सुचारू रूप से नहीं हो पाता। यहीं दूषित पदार्थ रक्त के साथ मिलकर शरीर के अन्य अवयवों (organs) को विकृत कर देते हैं और रोग की अवस्था पैदा हो जाती है। यौगिक षट्कर्मो अर्थात् शोधन के छः प्रकारों से विषैले पदार्थों का निष्कासन होता हैं और धातुओं के बीच संतुलन बनाये रखा जा सकता है। जब ये धातुएं संतुलन की अवस्था में रहती हैं तो व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम रहता है। इसी को योग में 'समत्व योग उच्यते' कहा गया है।

समत्व की अवस्था से ही कर्मो में कुशलता आती है। इस प्रकार यौगिक षट्कर्मो के द्वारा शरीर का शोधन होता है।[2]

उपनिषदों में कहा गया है – बलहीन शरीर से आत्म–साक्षात्कार संभव नहीं है। इसलिए शरीर में व्याधियों को उत्पन्न न होने देने और यदि व्याधि उत्पन्न हो गई हो तो उसे दूर करने के लिए तथा शरीर को स्वस्थ व साधनायोग्य बनाने के लिए हठयोगियों ने षट्कर्मो का विधान किया है। महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में इनको शौच के अन्तर्गत रखा है; परन्तु समय और अनुभव ने हठयोगियों को सिखाया कि प्राणायाम आदि क्रियाओं से जितने समय में शरीर के मल दूर किये जाते हैं, उससे कम समय में षट्कर्मो द्वारा शरीर के मल दूर किये जा सकते है। इसलिए इन कर्मो की आवश्यकता को अनुभव करते हुए इनका विकास किया गया। इन षट्कर्मों का विधान इस प्रकार किया गया है कि ये सम्पूर्ण शरीर की शुद्धि करने में समर्थ हो सकें।

हठयोग व योग के अन्य सभी आध्यात्मिक ग्रंथों में प्राणायाम के महत्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया है। हठप्रदीपिका में प्राणायाम को मन को स्थिर करने वाला माना है। मनुस्मृति में इन्द्रियों के सभी दोषों को दूर करने के लिए प्राणायाम का निर्देश किया गया है। प्राणायाम के ये सभी लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब प्राणायाम सिद्ध कर लिया गया हो तथा प्राण शरीरगत सूक्ष्म से सूक्ष्म नाड़ियों में संचरण करने लगे और वह तभी सम्भव है, जब शरीर की स्थूल व सूक्ष्म नाड़ियां मलों से रहित हो गयी हों, अन्यथा प्राणायाम बहुत समय में सिद्ध होगा और शरीर में विकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। इसीलिए हठयोग के ग्रंथों में प्राणायाम साधना से पूर्व षट्कर्मों के अभ्यास का विधान किया है, जिससे शरीर मलों से रहित हो सके और प्राणायाम का पूरा लाभ प्राप्त किया जा सकें।

षट्कर्म अभ्यास करने के सम्बन्ध में संत चरणदास जी कहते है–साधना में प्रथम षट्कर्मो का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि इनके करने से शरीर शुद्ध हो जाता है, शरीर निरोग हो जाता है तथा बुद्धि भी प्रकाशमान हो जाती है, जिससे यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है।[3] इन षट्कर्मो के संबंध में योगी स्वात्माराम जी ने भी कहा है–शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली इन छः क्रियाओं को गोपनीय रखनी चाहिए ; अर्थात उनका तात्पर्य है कि यौगिक षटकर्मो का अभ्यास व्यक्तिगत रूप से ही करना चाहिए। प्रदर्शन के उद्देश्य से इनका अभ्यास नही किया जाना चाहिए ; क्योकि इससे लाभ की अपेक्षा हानि की सम्भावना अधिक रहती है। साथ ही यौगिक अभ्यासों का मूल लक्ष्य व्यक्ति की प्रवृति को अन्तर्मुखी कर उसकी आन्तरिक शक्तियों का विकास करना है, जबकि प्रदर्शन के उद्देश्य से किया गया अभ्यास बर्हिमुखी बनाकर व्यक्ति की शक्ति को नष्ट करता है। इसीलिए योगिराजों द्वारा इन्हें बहुत महत्व दिया गया है।[4]

शरीर की शुद्धि के पश्चात् ही साधक आन्तरिक मलों की निवृत्ति करने में सफल होता है। प्राणायाम से पूर्व इनकी आवश्यकता इसलिए भी कही गई है कि मल से पूरित नाड़ियों में प्राण–संचरण न होने के कारण साधना में सफल होना संभव नहीं है,[5] और जब षट्कर्मो के अभ्यास से नाड़ियां शुद्ध हो जाती है, तब योगी प्राणायाम करने में समर्थ हो जाता है।[6] इसलिए स्थूल तथा श्लेष्माधिक्य वाले साधकों को षट्कर्मो का अभ्यास करके शरीर को शुद्ध कर लेना चाहिए, अन्य साधकों जिनके त्रिदोष साम्यावस्था में हैं, उनको करने की विशेष आवश्यकता नहीं हैं।[7]

हठयोग के प्रमुख ग्रंथ जैसे–स्वामी स्वात्माराम कृत 'हठप्रदीपिका' महर्षि घेरण्ड संहिता' तथा संत चरणदास कृत 'अष्टांग योग' में हमें षट्कर्मो के स्वस्थप्रद एवं चिकित्सीय लाभो का वर्णन प्राप्त होता है। षट्कर्म के एक मुख्य अंग नेति क्रिया के संबंध में स्वामी स्वात्माराम कृत ''हठप्रदीपिका'' में कहा गया है – यह नेति क्रिया कपालप्रदेश (मस्तिष्क) को शुद्ध करती है, दिव्य (सूक्ष्म) दृष्टि प्रदान करती है और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोग समूहों को शीघ्र नष्ट करती हैं।[8] घेरण्ड संहिता के अनुसार–नेति क्रिया के साधने के फलस्वरूप कफ–दोषों से निवृति और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती हैं।[9] अष्टांग योग (भक्तिसागर) के अनुसार–नेति क्रिया के अभ्यास से कान, नाक के रोग नहीं होते है।[10] तथा नेत्र निर्मल होते हैं। इसी प्रकार धौति के एक प्रकार अग्निसार अन्तः धौति के अभ्यास से उदर रोग नष्ट होते हैं। तथा जठराग्नि तीव्र होती है।[11] इस क्रिया के अभ्यास में विधिपूर्वक पेट का प्रसारण एवं संकुचन किया जाता है, जिससे पेट के सभी अंगों की मालिश होती है। और उनकी क्रियाशील बढ़ती है। पाचन–प्रणाली को व्यवस्थित कर यह क्रिया आवश्यक पाचक रसों के स्राव को नियमित करती है, जिससे भोजन का पाचन भलीभांति ढंग से होता है। इसी प्रकार घेरण्ड संहिता में दाँतों की रक्षा के लिए दन्तमूल धौति[12] का तथा कफ दोष के रोकथाम हेतु जिहाशोधन धौति का[13] साथ ही नेत्र ज्योति वृद्धि हेतु कपालरन्ध्र धौति का[14] व कफ और पित्त के निवारण हेतु वमन धौति[15] व दण्ड धौति[16] का विधान बताया है। इसी प्रकार धौति के मुख्य प्रकार वस्त्र धौति के अभ्यास से खाँसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अन्य बीसों प्रकार के कफ सम्बधी रोग निसंन्देह नष्ट हो जाते हैं।[17] (हठप्रदीपिका–2/25) वहीं अष्टांगयोग में धौति–कर्म करने से शरीर शुद्ध होता है तथा पित्त व कफ के रोगों का निवारण होता है।[18] मूलशोधन का अभ्यास कोष्ठ–काठिन्य (मल की शुष्कता, मलवरोध) एवं आमजीर्ण आदि रोगों को दूर कर जठरग्नि प्रदीप्त करता है।[19] षट्कर्म के ही एक महत्वपूर्ण अंग 'बस्तिकर्म' (शंखप्रक्षालन) के स्वस्थप्रद व चिकित्सीय पक्षों के संबंध में बात करें तो '' बस्ति क्रिया के अभ्यास के फलस्वरूप वायुगोला, तिल्ली, जलोदर, तथा वात–पित्त–कफ (त्रिदोष) जन्य सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।''[20] धातु, इन्द्रिय तथा अन्तः करण को प्रसन्नता होती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा शरीर में कान्ति लाता है।[21] घेरण्ड संहिता के अनुसार–यह जल बस्तिकर्म प्रमेह, उदावर्त, क्रूरवायु का निवारण कर शरीर को कामदेव के समान सुन्दर बना देता है।[22] अष्टांगयोग के अनुसार–इस क्रिया द्वारा गर्मी से होने वाले लिंग व गुदा के रोग नष्ट होते है।[23]

इसी प्रकार षट्कर्म की महत्वपूर्ण क्रियाओं में से एक नौलि क्रिया है। हठप्रदीपिका के अनुसार–'' सदा–सर्वदा आनन्द को लाने वाली यह नौलि –क्रिया मंद जठराग्नि को प्रदीप्त कर पाचन–क्रिया आदि को तेज करती है, विविध दोषों और रोगों को नष्ट करती है, इसलिए यह हठक्रियाओं में श्रेष्ठ है।[24] घेरण्ड संहिता में इस नौलि क्रिया के संबंध में कहा गया है– ''उदर को दोनों पार्श्वो में अत्यन्त वेगपूर्वक घुमाना चाहिए, यह लौलिक अर्थात् नौलिकर्म सब रोगों का नाशक तथा जठरनाल का उद्दीपक है।[25] इसी प्रकार अष्टांग योग के अनुसार इस क्रिया से अपान वायु वश में होती है। पेट की सफाई होती है तथा पेट के रोगों के साथ–साथ अनेक रोग जैसे–बुखार, तिल्ली का बढ़ना, वायु–गोले का दर्द कभी उत्पन्न नहीं होते हैं।[26] हठयोग की एक शोधन क्रिया के रूप में त्राटक के स्वस्थप्रद एवं चिकित्सीय लाभों का वर्णन हमें प्राप्त होता है। त्राटक के अभ्यास में मस्तिष्क के क्षैत्र को शान्त और निर्मल बनाने का प्रयास किया जाता है। हठप्रदीपिका के अनुसार– त्राटक नेत्र रोगों को दूर करता है तथा आलस्य जैसे (योगमार्ग में बाधक तत्वों) को नहीं आने देता है।[27] घेरण्ड संहिता के अनुसार–'' त्राटक क्रिया द्वारा नेत्र के दोषों का निवारण होकर दिव्य दृष्टि की प्राप्त होती है।[28] वहीं अष्टांग योग के अनुसार– इससे दृष्टि स्थिर होती है तथा यह उन सभी ध्यानों में जो नैत्र से किए जाते हैं, सफलता दिलाता है।[29] शोधन क्रिया का एक अन्य अंग कपालभाति है। यह एक प्रकार का प्राणायाम भी है, क्योंकि प्राणायाम कोश की शुद्धि इस अभ्यास से होती है। स्वामी स्वात्माराम कृत 'हठप्रदीपिका' के अनुसार–लुहार की धौकंनी के समान शीघ्रता से रेचक–पूरक करने से कपालभाति होती है। यह कफ दोषों को नष्ट करने वाली है।[30]

इसी प्रकार घेरण्ड संहिता के अनुसार इसका साधन करने से कफ से उत्पन्न दोषों का निवारण होता है।[31]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हठयोग के प्रमुख ग्रंथ जैसे–हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता तथा अष्टांगयोग में विभिन्न षट्कर्मो का वर्णन उनके चिकित्सीय पक्षों की दृष्टि से पाया जाता है। हठयोग पद्धति में षट्कर्मो का प्रयोग शरीर में स्थूल रूप से स्थित मलों के निवारण की प्रक्रिया हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं; जिससे कि शारीरिक एवं मानसिक दोष, विभिन्न अग्नियाँ व धातुएँ संतुलित एवं प्राकृत अवस्था में व्यवस्थित होकर प्राणशक्ति के संचालन को गतिशील बनाये रखती है।

संदर्भ ग्रथ

1. स्वामी सत्यानंद सरस्वती– आसन, प्राणायाम, मुद्रा बंध, पृष्ठ–501
2. निसर्गोपचार वार्ता–राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान पुणे, फरवरी–2009, पृष्ठ–3
3. पहिले ये सब साधिये, काया होवै शुद्धि। रोग न लागै देह को, उज्जवल होवै बुद्धि।। अष्टांगयोग श्लोक संख्या–155
4. कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम्। विचित्रगुणसंधायिपूज्यते योगिपुङ्गवैः।। ह.प्र.–2/23
5. मलाकुलासु नाडीषु मारूतो नैव मध्यगः। कथं स्यादुन्मनीभावःकार्यसिद्धिः कथं भवेत्।। ह.प्र.–2/4
6. शुद्धिमेति यदा सर्व नाडीचक्रं मलाकुलम्। तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः।। ह.प्र.–2/5
7. मेदः श्लेष्माधिकः पूर्व षट्कर्माणि समाचरेत्। अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।। ह.प्र.–2/21
8. कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टि प्रदायिनी। जत्रूर्ध्वजातरोगौधं नेतिराशु निहन्ति च।। ह.प्र.–2/31
9. साधनान्नेतिकार्यस्य कफदोष विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।। घे.सं.–1/51
10. कान नाक अरू दांत को, रोग न व्यापै कोय। उज्जवल होवे नैनही, नित नेती करि सोय।। अष्टांग योग श्लोक संख्या–157
11. नाभिग्रन्थि मेरूपृष्ठे..... उदरामयजं त्वक्त्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत।। घे.स.–1/19–20
12. नित्यं कुर्यात्प्रभाते च दन्तरक्षाच योगवित्। दन्तमूलं धावनादिकार्येषु योगिनां मतम्।। घे.स.–1/27
13. तर्जनीमध्यमानामा.....शनैःशनैः मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत्।। घे.स.–1/29
14. वृद्धाङ्गुष्ठेन.....नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।। घे.स.–1/33–34
15. नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत्। घे.स.–1/39
16. कफं पित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना। दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्रुवम्।।घे.स.–1/37
17. कासश्वास प्लीहकुण्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।धौतिकर्म प्रभावेत प्रयान्त्येव न संशयः।। ह.प्र.–2/25
18. काया होवै शुद्धही, भजै पित्त कफ रोग। शुकदेव कहै धौति करम, साधै योगी लोग।। अत्योगयोग र.स.–158
19. वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्ण निवारयेत्। कारणं कान्तिपुष्टयोश्च दीपनं वहिनमण्डलम्।।घे.स.–1/44
20. गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः। बस्तिकर्मप्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः।। ह.प्र–2/28
21. धात्विन्द्रियान्तः करणप्रसादं दद्याच कान्तिं दहनप्रदीप्तिम्। अशेषदोषोपचयं निहन्यादभ्यस्यमानं जलबस्तिकर्म।। ह.प्र. –2/29
22. प्रमेहं च उदावर्त क्रूरवायुं निवारयेत। भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत।। ह.प्र. 1/47
23. यही जु बस्ती कर्म है, गुरू बिन पावै नाहिं। लिंग गुदा के रोग जो, गर्मी के नशिजाहिं।। अष्टांगयोग श.स.–159
24. मन्दाग्निसंदीपनपाचनादिसंधाययिकानन्दकरी सदैव। अशेषदोषमयीशोषणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः।। ह.प्र. –2/35
25. अमन्दवेगेन तुन्दं भ्रामयेदुभपार्श्वयोः। सवैरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्द्धनम्।। घे.सं.–1/52
26. अपानवायु तासों वश आवै। मेल पेट में रहन न पावै।। तापतिली अरू गोला शूल। होन न पावै नेक न मूल।। और उदर के रोग कहावै। सोभी वै रहने नहि पावै।। अंष्टागयोग श.स–161
27. मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्। हठप्रदीपिका–2/33
28. नेत्र रोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टि : प्रजायते। घेरण्डसंहिता– 1/54
29. होय दृष्टि थिर शुकदेव कहै, जेते ध्यान नैन के होई, चरणदास पूरण हो सोई।। अष्टांगयोग श.स. 162
30. अष्टांगयोग श.स.–162 भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ। कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।। ह.प्र–2/36
31. भालभाति त्रिधा कुर्यात्कफदोष निवारयेत।। घे.स.–1/55